THE TIMES OF INDIA

Date: 05-03-25

Don't Babysit

Some SC remarks on Allahbadia case may encourage more censorship. Creatives always push the envelope

TOI Editorials

SC has restored podcaster Ranveer Allahbadia's economic freedom but curbs on his freedom of expression remain. He may now make shows as long as they don't violate 'traditional Indian norms' on decency and morality. It's a conditional relief, and welcome as far as it allows Allahbadia and his large crew to earn their livelihood, which is part of their right to life. But it also raises questions about the direction his case has taken and the restraints placed on him. Allahbadia's fault was that he said-in a paywalled show something that most people would consider disgusting, or distasteful, across cultures. When police complaints were filed, Allahbadia sought SC's protection. He got a chiding, a total ban on podcasting until further orders, and protection from arrest on the condition that he surrender his passport.

The blanket ban was unusual because it broke with precedent. In 2015's Shreya Singhal case, SC said restrictions "must be narrowly tailored or narrowly interpreted so as to abridge or restrict only what is absolutely necessary". In 2022, it refused to bar Mohammed Zubair from tweeting because "gag orders have a chilling effect on the freedom of speech". As far back as 1950, SC had rejected "pre-censorship" which is what requiring Allahbadia to adhere to 'traditional decency and morality' amounts to. Besides, as SC said in the Zubair case, "If he posts tweets in violation of law, he would be answerable for it." So, Allahbadia deserves to be judged post-facto too.

The question before SC was whether Allahbadia's remarks were obscene-to be considered a criminal offence. His counsel reminded the court that disgust and revulsion are not tests of obscenity. SC, however, seems intent to fill the "vacuum" around the question of obscenity/vulgarity, and has sought govt's assistance, which seems only too eager that the "young generation must be protected from such shows". There lies the problem. Freedom of speech in India was fettered with "reasonable restrictions" 75 years ago. We don't need more curbs. Certainly not those based on "traditional" ideas of decency and morality, that can't accommodate anything from torn jeans to live-ins. Creatives-filmmakers, writers, podcasters-constantly push the envelope. Sometimes they go too far, in some people's eyes. That's the nature of creativity. But it shouldn't be a pretext to muzzle them or babysit us.

दैनिक भास्कर

Date: 05-03-25

आखिर क्यों हम निर्यात में दूसरे देशों से पीछे हैं?

संपादकीय

ट्रम्प की नित नई घोषणाओं से दुनिया सकते में है। उन्होंने कहा है कि इम्पोर्टेड कार, सेमीकंडक्टर और औषधियों के बाद अब लकड़ी और वन-उत्पादों पर नए टैरिफ की घोषणा जल्द की जाएगी। वैश्वीकरण के दौर में विकासशील देश सेवा या माल के निर्यात के बिना विकास में तेजी नहीं ला सकते। इस वर्ष भी तमाम विकास के दावों के बीच भारत ने आयात ज्यादा किया और निर्यात कम हमेशा की तरह चीन ने इस मजबूरी का भरपूर लाभ उठाया आखिर क्यों हम निर्यात में बड़े ही नहीं, छोटे सक्षम पड़ोसियों से भी पीछे हैं? कृषि प्रधान हमारे देश में क्यों दूध, गेहूं, चावल, चीनी, स्टील, दवाएं, मोबाइल, सामान्य जरूरतों की वस्तुएं वैश्विक बाजार से महंगी हैं? गेहूं या दूध जितनी लागत पर हम पैदा करते हैं, उससे कम पर सात समंदर पार से आ सकता है। कुछ खनिज हमारे यहां भी पैदा होते हैं। भारत और चीन लगभग समान भूभाग (14 से 16 करोड़ हेक्टेयर) में खेती करते हैं लेकिन दोनों के उत्पादन में जमीन-आसमान का अंतर है। हालांकि दुनिया में दूध सबसे ज्यादा भारत में पैदा होता है लेकिन प्रति-पशु दूध उत्पादन में भारत वैश्विक औसत से कम है। मोबाइल से लेकर बल्ब तक भारत को चीन सस्ता देता है। इसका मूल कारण है इन व्यवसायों में तकनीकी और कौशल का कम है इस्तेमाल और सरकार का सुविधाओं पर कम खर्च | आज भी भारत का 42 प्रतिशत खेत ही सिंचित है। चरागाह कम होने से पशुओं का चारा महंगा होता गया है। उत्पादन नहीं, उत्पादकता-क्रांति आज जरूरी है।

Date: 05-03-25

अमेरिका के बदले हुए रवैए से तमाम देश प्रभावित होंगे

जोसेफ एस. नाय, (हार्वर्ड यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर एमेरिटस)

ट्रम्प ने विश्व व्यवस्था के भविष्य पर गंभीर प्रश्नवाचक चिह्न लगा दिए हैं। अपने हाल के भाषणों और यूएन की वोटिंग में उनके प्रशासन ने रूस का पक्ष लिया है, जिसने अपने शांतिपूर्ण पड़ोसी यूक्रेन पर हमला बोला है। उनकी टैरिफ की धमकियों ने दीर्घकालिक गठबंधनों और वैश्विक व्यापार प्रणाली के भविष्य पर सवाल उठाए हैं। वहीं पेरिस जलवायु समझौते और विश्व स्वास्थ्य संगठन से अमेरिका के हटने से अंतरराष्ट्रीय चुनौतियों पर सहयोग कम हुआ है। दुनिया से अलग-थलग और आत्म-केंद्रित अमेरिका दुनिया के लिए एक परेशान करने वाली बात होगी। ऐसे में रूस बलप्रयोग से यूरोप पर हावी होने की कोशिश करेगा। यूरोप को एकता दिखानी होगी और अपनी रक्षा के लिए खुद को तैयार करना होगा, भले ही अमेरिका का समर्थन अब भी नाटो के लिए महत्वपूर्ण हो दूसरी तरफ चीन भी अब एशिया में अपनी दादागिरी बढ़ा देगा | उसके पड़ोसियों को होशियार रहना होगा।

अमेरिका के इस रुख से सभी देश प्रभावित होंगे, क्योंकि दुनिया आपस में जुड़ी हुई है। एक अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था देशों के बीच शक्ति के स्थिर वितरण पर टिकी होती है। लेकिन अगर एक महाशक्ति की घरेलू राजनीति बहुत तेजी से बदलती है तो सब पर असर होता है । आधुनिक राष्ट्र राज्य प्रणाली से पहले व्यवस्थाएं अक्सर ताकत के सिद्धांत से ही लागू की जाती थीं शक्तिशाली साम्राज्यों के बीच युद्ध और शांति के मानदंड भूगोल से तय होते थे। रोम और पार्थिया एक दूसरे के समीप होने के कारण लड़ते थे, जबकि रोम, चीन और मेसोअमेरिकन साम्राज्यों में युद्ध नहीं होता था।

अतीत के साम्राज्य हार्ड और सॉफ्ट दोनों तरह की पॉवर पर निर्भर थे। चीनी साम्राज्य को उसकी मजबूत परंपराएं विकसित राजनीतिक संस्थाएं और पारस्परिक आर्थिक लाभ जोड़कर रखते थे। रोम भी ऐसा ही था, खासकर रिपब्लिक में। रोमनों के बाद के यूरोप में पोप और वंशवादी राजतंत्रों जैसी संस्थाएं थीं। क्षेत्रों में अकसर विवाह और पारिवारिक गठबंधनों के माध्यम से शासन बदल जाता था, चाहे लोगों की इच्छाएं कुछ भी हों। युद्ध अकसर वंशवादी विचारों से प्रेरित होते थे। सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों में प्रोटेस्टेंटवाद के उदय से बदलाव हुए। अठारहवीं शताब्दी के अंत में फ्रांसीसी क्रांति ने राजशाही मानदंडों को बाधित कर दिया, जो लंबे समय से यूरोपीय शक्ति संतुलन को बनाए रखे थे । नेपोलियन की सेनाओं ने कई क्षेत्रीय सीमाओं को मिटा दिया और नए राज्यों का निर्माण किया, जिससे 1815 की वियना कांग्रेस में आधुनिक राज्य प्रणाली बनाने के लिए पहला प्रयास किया गया। 1848 की क्रांतियों और दोनों विश्वयुद्धों ने विश्व व्यवस्था को नाटकीय रूप से बदल दिया। लेकिन युद्धोत्तर दुनिया को अमेरिका की सदी कहा गया और 1991 में शीतयुद्ध के समापन ने अमेरिका को दुनिया की एकछत्र ताकत बना दिया। इसी की मदद से अमेरिका ने डब्ल्यूटीओ इंटरनेशनल क्रिमिनल कोर्ट और पेरिस क्लाइमेट एग्रीमेंट जैसी संस्थाएं रची थीं।

ट्रम्प की वापसी से पहले भी कुछ विश्लेषकों का मानना था कि यह अमेरिकी व्यवस्था अब समाप्त हो रही है। इक्कीसवीं सदी ने शक्ति के वितरण में एक और बदलाव किया था, जिसे आमतौर पर एशिया के उत्थान के रूप में वर्णित किया जाता है। एक समय एशिया विश्व अर्थव्यवस्था का केंद्र था, लेकिन पश्चिम में औद्योगिक क्रांति के बाद यह पिछड़ गया। और अन्य क्षेत्रों की तरह इसे नए साम्राज्यवाद का सामना करना पड़ा, जिसे पश्चिमी

सैन्य और संचार प्रौद्योगिकियों ने संभव बनाया था। अब एशिया वैश्विक आर्थिक उत्पादन के प्रमुख स्रोत के रूप में अपनी पहले की स्थिति में लौट रहा है। हालांकि यह अमेरिका की तुलना में यूरोप की कीमत पर अधिक हुआ है। वैश्विक जीडीपी में अमेरिका का हिस्सा अभी भी एक-चौथाई है। चीन ने अमेरिका की बढ़त को काफी हद तक कम कर दिया है, लेकिन यह आर्थिक और सैन्य रूप से या गठबंधनों के मामले में अमेरिका से आगे नहीं निकल पाया है। लेकिन क्या अब हम अमेरिकी पतन के नए दौर में प्रवेश कर रहे हैं?

दैनिक जागरण

Date: 05-03-25

भारतीय उद्यमों की क्षमता

संपादकीय

सूक्ष्म, लघु और मध्यम श्रेणी के उद्यमों अर्थात एमएसएमई को लेकर एक वेबिनार को संबोधित करते हुए प्रधानमंत्री ने यह सही कहा कि उद्योगों को अनुसंधान एवं विकास का उपयोग करके ऐसे उत्पादों के निर्माण पर ध्यान देना चाहिए, जिनकी विदेश में मांग है, लेकिन आखिर ऐसा कब होगा ? उचित यह होगा कि यह जानने की कोशिश की जाए कि भारतीय उद्योग यह काम क्यों नहीं कर पा रहे हैं? यह जानना इसलिए आवश्यक है, क्योंकि तमाम अनुकूल परिस्थितियों के साथ देश में सस्ता श्रम भी उपलब्ध है। इस तथ्य को ओझल नहीं किया जाना चाहिए कि मेक इन इंडिया और आत्मनिर्भर भारत अभियान के बाद भी चीन विश्व का कारखाना बना हुआ है । हमारे उद्योग चीन का मुकाबला नहीं कर पा रहे हैं। चिंता की बात यह है कि अब कई पूर्वी एशियाई देश विश्व व्यापार में अपनी भागीदारी बढ़ा रहे हैं। एक तरह से अब भारतीय उद्योगों को उनसे मुकाबला करना पड़ रहा है। यह ठीक नहीं। भारतीय उद्योग उस गुणवत्ता के उत्पाद नहीं बना पा रहे हैं, जिनकी विश्व बाजार में मांग हैं। भारतीय उद्योग अपने उत्पादों की गुणवत्ता के मामले में ही नहीं पिछड़ रहे हैं, बल्कि उनकी उत्पादन लागत भी अधिक है।

हमारे उद्योग ऐसे उत्पाद भी नहीं बना पा रहे हैं, जो उच्च तकनीक आधारित हों और जो अपेक्षाकृत महंगे हों।

वे अपने उत्पादों को विश्वस्तरीय बना पाने में इसलिए नाकाम हैं, क्योंकि अनुसंधान एवं विकास पर पर्याप्त राशि खर्च नहीं कर रहे हैं। विडंबना यह है कि जो कारोबारी आर्थिक रूप से सक्षम हैं और अनुसंधान एवं विकास पर आसानी से पैसा खर्च कर सकते हैं, वे भी ऐसा करने के लिए आगे नहीं आ पा रहे हैं। चूंकि अधिकांश एमएसएमई अनुसंधान एवं विकास पर अधिक खर्च करने की स्थिति में नहीं, इसलिए सरकार को ऐसा कोई तंत्र बनाना चाहिए, जो एमएसएमई के लिए यह काम करे और उन्हें उच्च गुणवत्ता वाले उत्पाद बनाने में सक्षम बनाए। इससे ही उनके उत्पादों का निर्यात बढ़ेगा और यह कहा जा सकेगा कि भारत वैश्विक अर्थव्यवस्था के लिए वृद्धि इंजन बन गया है। सरकार को ऐसे औद्योगिक क्षेत्र बनाने चाहिए, जहां पर उद्योगों के लिए वह सब कुछ आसानी से उपलब्ध हो, जिसकी उन्हें आवश्यकता है। इस मामले में पूर्वी एशियाई देशों से सीख लेने में संकोच नहीं किया जाना चाहिए। प्रधानमंत्री ने अपने संबोधन में इसका भी उल्लेख किया कि बजट में सूक्ष्म, लघु और मध्यम श्रेणी के उद्यमों को प्रोत्साहन देने के लिए क्या उपाय किए गए हैं। उन्होंने छह करोड़ से अधिक एमएसएमई के लिए कर्ज वितरण के नए तरीके विकसित करने की आवश्यकता पर भी बल दिया। ऐसा किया ही जाना चाहिए, लेकिन यह समझा जाए तो बेहतर कि इन उद्यमों की समस्या कर्ज लेने में कठिनाई नहीं है ।

जनसत्ता

Date: 05-03-25

अभिव्यक्ति पर पहरा

संपादकीय

सर्वोच्च न्यायालय की यह टिप्पणी निस्संदेह बहुत गंभीर है कि संविधान को लागू हुए पचहत्तर वर्ष हो गए, अब तो कम से कम पुलिस को अभिव्यक्ति की आजादी का अर्थ समझना चाहिए। हालांकि यह टिप्पणी कोई पहली बार नहीं आई है। इससे पहले भी कई मौकों पर वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर बहसें हो चुकी हैं, अदालतें पुलिस को नसीहत दे चुकी हैं, मगर शायद उस पर संजीदगी से अमल की जरूरत नहीं समझी गई। इसी का नतीजा है कि अब भी जब तब ऐसे मामले अदालतों में पहुंच जाते हैं, जिनसे किसी की भावना के आहत होने का आरोप लगता है, जबकि वास्तव में उनमें ऐसा कुछ नहीं होता। चाहे वह फिल्मों के दृश्यों-संवादों, किसी राजनेता के बयानों या साहित्य के किसी अंश को लेकर भावनाएं आहत करने या भड़काने के आरोप लगते रहे हों या किसी ऐतिहासिक- मिथकीय प्रसंग

को लेकर की गई टिप्पणी पर कई बार तो कुछ बातों को लेकर आंदोलन तक उभारने की कोशिशें देखी गई हैं। ताजा मामला कांग्रेस नेता इमरान प्रतापगढ़ी की एक कविता को लेकर उठा, जब उन्होंने गुजरात के एक विवाह समारोह में उसे सुनाया और फिर सोशल मीडिया पर उसका अंश डाल दिया। उन पर आरोप लगा कि कविता में लोगों में हिंसा भड़काने का प्रयास किया गया है। वहां की पुलिस ने इस पर मुकदमा भी दर्ज कर लिया।

साहित्य और कलाओं में अभिव्यक्त विचार कई बार प्रतीकों और बिंबों में छिपे होते हैं, इसलिए उनके सही अर्थ खोलने में दिक्कत आ सकती है। प्रतापगढ़ी के मामले में गुजरात पुलिस को भी इसी के चलते धोखा हुआ होगा। सर्वोच्च न्यायालय ने इसे स्पष्ट भी किया कि अनुवाद में गलती की वजह से यह भ्रम हुआ होगा। मगर आजकल जिस तरह चुनिंदा तरीके से किसी के बयानों से भावनाओं के आहत होने के आरोप कुछ अधिक लगने लगे हैं और उनमें से कई मामलों में कानूनी कार्रवाई भी कर दी जाती है, उससे संविधान में वर्णित अभिव्यक्ति की आजादी का संकल्प ही धुंधला पड़ता नजर आने लगता है। जबकि कई बार स्थितियां इसके उलट भी देखी जाती हैं, मगर उन पर कोई कार्रवाई नहीं होती। जबसे सोशल मीडिया का चलन बढ़ा है, देशभक्ति, धर्म और आस्था के नाम पर कुछ लोग कुछ भी कहते-बोलते देखे जाने लगे हैं धर्म संसदों और कई सार्वजनिक सभाओं में संतों और राजनेताओं के आपत्तिजनक बयान देखे सुने गए, मगर उनमें पुलिस का रवैया पक्षपातपूर्ण ही देखा गया। इसलिए सर्वोच्च न्यायालय की यह टिप्पणी महत्त्वपूर्ण है कि प्राथमिकी दर्ज करने से पहले पुलिस को कुछ तो संवेदनशीलता दिखानी होगी।

हालांकि यह छिपी बात नहीं है कि पुलिस स्वायत्त तरीके से काम नहीं करती। अनेक कार्रवाइयां उसे सत्ता पक्ष के दबाव में करनी पड़ती हैं। इसलिए विपक्षी दलों के मामले में अगर अभिव्यक्ति की आजादी के कानून को हाशिये पर केल दिया या नजरअंदाज कर दिया जाता है, तो हैरानी की बात नहीं । यह कम बड़ी विडंबना नहीं कि साहित्य और कलाओं में अभिव्यक्त विचारों की व्याख्या भी अदालतों को करनी पड़ रही है । सत्ताएं सदा से अपनी आलोचना से तल्ख हो जाती रही हैं, पर आखिर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा कौन करेगा। पहला कर्तव्य तो पुलिस का ही बनता है कि वह उसकी सही-सही व्याख्या करे और फिर कानूनी कार्रवाई के बारे में सोचे । पर राजनीतिक उदारता के बगैर यह संभव नहीं जान पड़ता ।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 05-03-25

सावधान अभिव्यक्ति

संपादकीय

बीते दो दिनों में सुप्रीम कोर्ट ने अभिव्यक्ति की आजादी व धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचाने से जुड़े मामलों में जो फैसले किए हैं और इस दौरान जो टिप्पणियां की हैं, उसके निहितार्थों को समझने की आवश्यकता है। मंगलवार को 'मियां-टियां' और 'पाकिस्तानी' शब्दों के इस्तेमाल से जुड़ी याचिका की सुनवाई करते हुए न्यायमूर्ति बीवी नागरत्ना और न्यायमूर्ति सतीश चंद्र शर्मा की पीठ ने इस मुकदमे के आरोपी को इस आधार पर आरोप मुक्त कर दिया कि यह आईपीसी की धारा 298 के तहत धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचाने के अपराध के बराबर नहीं है। वैसे, अदालत ने इन शब्दों के प्रयोग को गैर-मुनासिब माना । गौर कीजिए, एक सरकारी कर्मचारी के खिलाफ इस्तेमाल इन शब्दों से जुड़े मुकदमे को निचली अदालत से सर्वोच्च न्यायालय तक का सफर तय करने में लगभग चार साल लगे, मगर दोनों पक्षों ने किसी पड़ाव पर यह समझदारी दिखाने की कोशिश नहीं की कि यह सिर्फ अहं की लड़ाई है। इससे न सिर्फ उनका वक्त और संसाधन जाया हो रहा है, बल्कि हजारों बहुत जरूरी मुकदमों की सुनवाई में भी देरी हो सकती है।

इससे पहले सोमवार को कांग्रेस सांसद इमरान प्रतापगढ़ी द्वारा सोशल मीडिया पर एक कविता पोस्ट करने के खिलाफ गुजरात पुलिस द्वारा दर्ज मामले की सुनवाई करते हुए आला अदालत ने राज्य पुलिस से जो कहा, वह कम मानीखेज नहीं है। अदालत की टिप्पणी थी कि हमारी आजादी के 75 साल बीत गए, अब तक तो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की कीमत पुलिस को समझ में आ जानी चाहिए थी। दरअसल, इन दिनों सोशल मीडिया में जिस पैमाने पर विष वमन हो रहा है, उसने पुलिस की चुनौतियां बढ़ा दी हैं। मगर उसकी कार्रवाइयां इसलिए प्रभावी नहीं होतीं, क्योंकि राज्य-दर-राज्य उनके पीछे के राजनीतिक पक्षपात भी स्पष्ट हो जाते हैं। राज्य पुलिस अक्सर सरकार विरोधी पोस्ट के मामले में तो तत्परता दिखाती है, मगर सत्तारूढ़ दल से जुड़े लोगों की वैसी ही गतिविधियां वह नजरअंदाज कर देती है। ऐसे में,सुप्रीम कोर्ट ने उचित ही गुजरात पुलिस को एहसास कराया है कि उसे असामाजिक तत्वों से निपटते हुए अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के बुनियादी लोकतांत्रिक मूल्य की रक्षा भी करनी है।

सोमवार को ही एक अन्य मामले में यू-ट्यूबर व पॉडकास्टर रणवीर इलाहाबादिया को पॉडकास्ट प्रसारित करने की इजाजत देते हुए शीर्ष अदालत ने अभिव्यक्ति की आजादी और प्रतिभा के उपयोग को लेकर कुछ गंभीर टिप्पणियां कीं । अदालत ने दोटूक शब्दों में कहा कि बोलने की आजादी का यह मतलब कतई नहीं है कि कुछ भी बोला जाए।

न्यायमूर्ति सूर्यकांत शर्मा ने उचित ही कहा कि हर समाज में नैतिकता के पैमाने अलग-अलग हो सकते हैं। हमने अपने यहां अभिव्यक्ति की आजादी की जो गारंटी दी है, वह शर्तों के साथ है। कला की आजादी का उपयोग करते हुए कलाकारों के लिए उन सीमाओं का ख्याल रखना जरूरी है। निस्संदेह, रणवीर ने उन मर्यादाओं का

उल्लंघन किया था। लेकिन आइंदा ऐसे हालात न बनें, इसके लिए अदालत ने सरकार से सोशल मीडिया व यू-ट्यूब की सामग्रियों के नियमन को लेकर कानून बनाने को भी कहा। मगर ऐसा करते हुए भी अदालत ने सेंसरशिप से बचने की हिदायत नत्थी की है। जाहिर है, उच्छृंखल हुए बिना आजादी के उपयोग में ही नागरिक का भी भला है और समाज का भी । चूंकि सोशल मीडिया अब आमदनी का भी एक महत्वपूर्ण जरिया बन चुका है, इसलिए इसमें वैधानिक जिम्मेदारी तय होनी ही चाहिए ।

Date: 05-03-25

यूक्रेन में अगर युद्ध रोक पाये यूरोप

अश्विनी महापात्रा, (प्रोफेसर, जेएनयू)

ओवल ऑफिस में अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप के साथ बैठक बेनतीजा रहने के बाद फ्रांस-ब्रिटेन सहित पूरे यूरोप के नेता जिस तरह यूक्रेन के राष्ट्रपति वोलोदिमीर जेलेंस्की के पक्ष में एकजुट हो गए हैं, उससे कयास लगाया जाने लगा है कि यूक्रेन संकट का जल्द समाधान निकल सकता है। ब्रिटिश प्रधानमंत्री र स्टार्मर ने तो यूक्रेन और उसकी सुरक्षा का समर्थन करते हुए युद्ध समाप्ति के लिए चार चरणों का एक खाका भी पेश कर दिया है। उनकी योजना के मुताबिक, पहले चरण में यूक्रेन को सैन्य सहायता देते हुए रूस पर आर्थिक दबाव बनाया जाएगा। दूसरे चरण में, स्थायी शांति प्रक्रिया सुनिश्चित की जाएगी, जिसमें यूक्रेन की संप्रभुता और सुरक्षा से कोई समझौता नहीं होगा। उसे भी बातचीत की मेज पर बिठाया जाएगा। तीसरे चरण में, शांति समझौते के बाद यूक्रेन की सुरक्षा क्षमताओं को मजबूत किया जाएगा, ताकि भविष्य के किसी भी आक्रमण के लिए वह तैयार रहे, और चौथे चरण में, यूक्रेन समझौते की रक्षा करने और शांति के हिमायती देशों के साथ गठबंधन किया जाएगा। ये तमाम बातें कागज पर काफी उम्मीद जगाती हैं, मगर यूक्रेन - रूस युद्ध को रोकना और शांति प्रक्रिया को आगे बढ़ाना क्या इतना आसान है ?

आनन-फानन में ब्रिटेन ने यह योजना इसलिए पेश की है, क्योंकि पिछले दिनों अमेरिकी राष्ट्रपति कार्यालय डोनाल्ड ट्रंप और वोलोदिमीर जेलेंस्की के बीच की तीखी बहस पूरी दुनिया ने देखी। हालांकि, ऊपरी तौर पर यही लग रहा था कि डोनाल्ड ट्रंप शांति के हिमायती ऐसे नेता हैं, जो हर हाल में युद्ध खत्म करवाना चाहते हैं, मगर असलियत में वह उस दिन अपने देश की जनता को यह बताना चाह रहे थे कि पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति जो बाइडन ने कितनी गलतियां की हैं। दुनिया भर के मीडिया के सामने जैसी आक्रामकता उस दिन दिखाई गई, वह सब अनायास नहीं था, बल्कि राष्ट्रपति ट्रंप की सोची-समझी रणनीति का हिस्सा था। दरअसल, ट्रंप चुनाव प्रचार के समय से कहते आ रहे हैं कि फरवरी, 2022 से अब तक अमेरिका इस युद्ध में

65 अरब डॉलर की राशि फूंक चुका है। ट्रंप के मुताबिक, यदि बाइडन यूक्रेन को हथियार, मिसाइल व अन्य युद्ध सामग्री मुहैया नहीं कराते, तो अमेरिकी अर्थव्यवस्था पर बोझ नहीं पड़ता । 'मेक अमेरिका ग्रेट अगेन' की अपनी संकल्पना भी वह तभी साकार कर सकते हैं, जब अमेरिकी संसाधनों का पूरा इस्तेमाल अपने देश के हित में हो । यही कारण है कि उन्होंने जेलेंस्की पर दबाव बनाने का भरसक प्रयास किया। मगर यूक्रेन के राष्ट्रपति अड़ गए, जिसके बाद यूरोपीय देश उनका साथ देने के लिए आगे आए हैं।

यूरोपीय देशों का कदम बढ़ाना मुनासिब भी था, फिर चाहे अमेरिका के साथ उसके तनाव क्यों न बढ़ गए हों। वास्तव में, यह यूक्रेन ही था, जिसने यूरोप के कहने पर अपनी परमाणु क्षमताओं से किनारा कर लिया था। अगर यूक्रेन अपनी परमाणु योजना पर आगे बढ़ता रहता, तो आज परमाणु हथियारों के जखीरे के मामले में दुनिया का पांचवां सबसे बड़ा देश होता। हालांकि, अभी जेलेंस्की इसलिए यूरोपीय देशों का साथ चाहते हैं, क्योंकि वह अकेले रूस से नहीं लड़ सकते। वैसे, यूरोपीय देश अमेरिका को शांति प्रक्रिया से बाहर रखने का प्रयास कर रहे हैं, लेकिन वाशिंगटन की सहायता के बिना रूस- यूक्रेन युद्ध में समझौता संभव भी नहीं है। यूरोपीय देश लंबे समय तक यूक्रेन की आर्थिक मदद नहीं कर सकते, और यह बात जेलेंस्की भी भली- भांति जानते हैं। इसलिए, वह भले ट्रंप पर उंगली उठाकर लौट आए हों, मगर उनको वापस वाशिंगटन जाना ही पड़ेगा। उन्होंने बाद में अमेरिका के प्रति नरमी दिखाई भी है। हां, अब यह सब कितनी जल्दी होता है, यह देखने वाली बात होगी।

अमेरिका हो या यूरोप, किसी भी शांति समझौते पर पहुंचने के लिए उसे कई चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा। सबसे पहले तो यही सुनिश्चित करना होगा कि समझौते का मसौदा ऐसा बने, जो दोनों पक्षों को मंजूर हो। अगर एक धड़ा भी नाराज रहा, तो फिर शांति टिक नहीं सकती। डोनाल्ड ट्रंप को इस बात का खास ख्याल रखना होगा। यदि जेलेंस्की मन मारकर किसी समझौते पर राजी होते हैं या दबाव में टूट जाते हैं, तो आने वाले दिनों में फिर से इस इलाके में तनाव दिख सकता है। मुमकिन है, ऐसा कोई समझौता यूक्रेनियों को पसंद न आए और वे मौका मिलते ही प्रहार करने के मनसूबे बांधने लग जाएं! अमेरिका के मौजूदा रुख से यूक्रेन असंतुष्ट होने की आशंका ही अधिक है।

बहरहाल, रूस द्वारा कब्जा किए गए क्षेत्रों को वापस यूक्रेन को दिलाना भी संभावित शांति समझौते की एक बड़ी चुनौती होगी। रूसी राष्ट्रपति का दावा है कि उन्होंने यूक्रेन का करीब 20 फीसदी हिस्सा अपने देश में मिला लिया है। ऐसे में, यूक्रेन के कितने क्षेत्र को रूस वापस देने के लिए तैयार होगा और किस समय- सीमा के भीतर यह प्रक्रिया पूरी होगी इस पर सहमति बनानी होगी। इसी तरह, साल 2014 से ही क्रीमिया पररूस का कब्जा बना हुआ है, तो शांति समझौते का यह भी एक बड़ा मुद्दा हो सकता है।
इन सभी कवायदों में भारत की भूमिका बहुत सीमित होगी। ऐसे में, चुपचाप बदलते घटनाक्रमों पर नजर बनाए

रखना ही उचित है। हालांकि, यूक्रेन के बहाने यदि अमेरिका और यूरोप में तनाव बढ़ता है, तो यह भारत के हित में हो सकता है। ऐसी किसी तनातनी में भारत को अपने पाले में करने के लिए यूरोपीय देश यहां अपनी आर्थिक गतिविधि बढ़ा सकते हैं, जिससे कई तरह के नए निवेश भारत आ सकते हैं।

रही बात रूस की, तो इस पूरे मामले में वह सबसे बेहतर स्थिति में दिख रहा है। धीरे-धीरे ही सही, उसने यूक्रेन पर अपनी गिरफ्त मजबूत बना ली है। चूंकि यूक्रेन से अमेरिका ने हाथ झटक लिया है और खबर यह भी आ रही है कि अमेरिका ने यूक्रेन को दी जाने वाली सहायता समीक्षा होने तक रोक दी है। उसने कहा है कि राष्ट्रपति ट्रंप का ध्यान शांति पर है और वह अपने लक्ष्य को लेकर प्रतिबद्ध हैं। ऐसे में, रूस के लिए परिस्थिति काफी अनुकूल दिख रही है। लिहाजा, अभी पूरा दबाव वोलोदिमीर जेलेंस्की पर है कि वह किस तरह यूक्रेन संकट का हल निकाल पाते हैं!

Date: 05-03-25

प्रभावशाली यु-ट्यूबर्स में बढ़े जिम्मेदारी का एहसास

चार्ल्स असीसी, (सह-संस्थापक, फाउंडिंग फ्यूल)

सर्वोच्च न्यायालय ने एक जाने-माने यू-ट्यूबर पर दो सप्ताह से लगी रोक को 3 मार्च को हटा लिया। सर्वोच्च न्यायालय ने उस यू-ट्यूबर पर जुर्माना नहीं लगाया या उसे चेतावनी नहीं दी थी; उसे बस कानूनी रूप से वीडियो बनाने से रोक दिया था। भारत के चर्चित यू-ट्यूबर्स में से एक रणवीर इलाहाबादिया ने एक कॉमेडी शो के एपिसोड में अश्लील टिप्पणियां की थीं, जिससे विवाद हो गया था सुप्रीम कोर्ट ने हस्तक्षेप किया और उसे कंटेंट बनाने से रोक दिया। लगभग उसी समय, सरकारने दिशा-निर्देश जारी किए, जिसमें सोशल मीडिया और सोशल प्लेटफॉर्म को आईटी नियम 2021 के अनुरूप ए-रेटेड कंटेंट के लिए सख्त एक्सेस कंट्रोल लागू करने के लिए कहा गया।

वास्तव में, यह मामला व्यापक है। भारत में इंटरनेट को लेकर बुनियादी बदलाव हो रहे हैं। सोचकर हैरत होती है कि इंटरनेट की प्रकृति पहले क्या थी, क्या बन गई और कितने बदलाव आ रहे हैं ! डिजिटल प्लेटफॉर्म पर हमारी अभिव्यक्ति की सीमा क्या है ? यह ऐसा सवाल है, जिसका सामना हर किसी को कभी न कभी करना पड़ रहा है। ऑनलाइन अभिव्यक्ति को कौन नियंत्रित करता है- सोशल प्लेटफॉर्म, अदालतें या सरकार ? इस गिनती में उपयोगकर्ता कहां आते हैं? जब यू-ट्यूब के तीन सह-संस्थापकों में से एक जावेद करीम अप्रैल 2005 में सैन डिएगो चिड़ियाघर में हाथ के एक बाड़े के सामने खड़े थे, तो उन्हें बिल्कुल भी अंदाजा नहीं था कि वह

इतिहास रच रहे हैं। 19 सेकंड की एक क्लिप, मी एट द जू, यू-ट्यूब पर अपलोड किया गया पहला वीडियो था । वह वीडियो भले साधारण था, पर उसने एक बहुत बड़ी और गहरी शुरुआत की।

यू-ट्यूब की शुरुआत एक ऐसी जगह के रूप में हुई थी, जहां लोग घरेलू वीडियो और ट्यूटोरियल साझा कर सकते थे, अपने जीवन का दस्तावेजीकरण कर सकते थे और जो चाहे प्रसारित कर सकते थे। यू-ट्यूब पर पारंपरिक मीडिया जैसी निगरानी या चौकीदारी नहीं थी । ऐसे में, इसने ऐसी संस्कृति को जन्म दिया, जहां अनजान और मामूली आवाजों को भी दर्शक श्रोता मिलने लगे।

जल्दी ही यू-ट्यूब प्लेटफॉर्म को भी एहसास हुआ कि लोगों का जुड़ाव ही उनकी कमाई है, तो उन्होंने वायरल होने को पुरस्कृत करना शुरू किया। वायरल होने की रणनीति सरल थी- लोगों को चकित करना, लाभ पहुंचाना और अपमानित करना | एल्गोरिदम ने सुनिश्चित किया कि यू-ट्यूब पर आई सामग्री को उन लोगों तक पहुंचाया जाए, जो सबसे ज्यादा प्रतिक्रिया करते हैं। यहां आक्रोश कोई गलत बात नहीं, बल्कि सिस्टम का हिस्सा है। यही वह इंटरनेट मंच है, जिस पर इलाहाबादिया जैसे लोग काम करते हैं और इसीलिए आज अक्सर विवाद की स्थितियां बन जाती हैं।

यह बदलाव कैसे हुआ? यहां ऐसा लगता है कि माहौल सावधानीपूर्वक विचार-विमर्श के विपरीत आक्रोश से प्रेरित है। ताजा मामले में यह तो साफ हो गया है कि सर्वोच्च न्यायालय भी सेंसरशिप नहीं चाहता है। हालांकि, यहां सब कुछ इतना आसान नहीं है। सरकारें एक व्यवस्था लागू करना चाहती हैं, प्लेटफॉर्म अपने उत्तरदायित्व से बचना चाहते हैं और यू-ट्यूबर बीच में फंस जाते हैं। न्यायालय ने इलाहाबादिया को कंटेंट बनाने की इजाजत देकर जो मिसाल कायम की है, उसे नजरंदाज करना मुश्किल है।

सूचना और प्रसारण मंत्रालय ने बाद में एक सलाह जारी की है, जिसमें प्लेटफॉर्म से कंटेंट के आयु-आधारित वर्गीकरण का कड़ाई से लागू करने के लिए कहा गया है। यह डिजिटल कंटेंट पर नियंत्रण को कड़ा करने का संकेत देता है। कुछ हद तक यह अपरिहार्य था। एक वास्तविक जोखिम यह है कि इलाज यहां बीमारी से भी बदतर हो सकता है। जब जरूरत से ज्यादा नियम बन जाते हैं, तो अभिव्यक्ति दब जाती है और जब कम नियम होते हैं, तो आप बुरे लोगों को पनपने देते हैं। सही संतुलन पाने के लिए प्रयास जारी रहने चाहिए। अंततः कंटेंट बनाने वालों को इस मामले से सबक लेना चाहिए। किसी भी प्लेटफॉर्म से शक्ति आती है और जिम्मेदारी भी । हम ऐसी दुनिया की ओर बढ़ रहे हैं, जहां इंटरनेट पर सक्रिय रचनाकारों को रचनात्मकता के साथ अनुपालन के बारे में भी सचेत रहना होगा। इससे इंटरनेट ज्यादा साफ-सुथरा और स्व-सेंसर होगा ।